जैन साधना एवं तर्क-विद्या में बौद्ध योग एवं न्याय-शास्त्र का सामंजस्य कर योग के क्षेत्र में नई दृष्टि प्रदान करने वाले आचार्य हरिभद्र सूरि का सांस्कृतिक परिचय।

☐ **प्रो० सोहनलाल पटनी एम. ए.**
[संस्कृत-हिन्दी]

जैन योग के महान् व्याख्याता-हरिभद्रसूरि

☐

आचार्य हरिभद्रसूरि चित्रकूट (चित्तौड़) के समर्थ ब्राह्मण विद्वान थे। जैन सम्प्रदाय में इनका विशिष्ठ स्थान है एवं इनका समय (वि० सं० ७५७ से ८२७ पर्यन्त) जैन साहित्य में हरिभद्र युग के नाम से अभिहित किया जाता है। आगम परम्परा के महान संरक्षक सिद्धसेन दिवाकर एवं जिनभद्र गणि के पश्चात् जैन जगत में हरिभद्र सूरि का अपना नाम था। विक्रमी संवत् १०८० में विरचित जिनेश्वर सूरि कृत—"हरिभद्रसूरि कृत अष्टक वृत्ति" में उनकी वन्दना इस प्रकार की गई है—

"सूर्यप्रकाश्यं क्व नु मण्डलं दिव:
खद्योतक: क्वास्य विभासनोद्यत:।
क्व धीश गम्यं हरिभद्र सद्वच:
क्वाधीरहं तस्य विभासनोद्यत: ॥"

आकाश मंडल को प्रकाशित करने वाला कहाँ तो सूर्य प्रकाश और स्वयं को उद्‌भासित करने वाला जुगनू कहाँ ?

बुद्धि सम्राट हरिभद्र के सद्‌वचन कहाँ और उनका स्पष्टीकरण करने वाला मैं कहाँ ? अर्थात् उनके वचन तो उनसे ही स्पष्ट हो सकते हैं।

संवत् ११६० में आचार्य वादिदेवसूरि ने अपने स्याद्‌वाद रत्नाकर में सिद्धसेन दिवाकर के साथ आचार्य हरिभद्रसूरिजी की वन्दना की है—

"श्री सिद्धसेन हरिभद्र मुखा प्रसिद्धास्ते,
सूरयो मयि भवन्तु कृपा प्रसादा:।
येषां विमृश्य सततं विविधान् निबन्धान्,
शास्त्रं चिकीर्षति तनु प्रतिभोऽपि मादृक् ॥"

वे श्री सिद्धसेन, हरिभद्र प्रमुख प्रसिद्ध आचार्य मुझ पर कृपावन्त हों कि जिनके विभिन्न निबन्धों को पढ़कर मुझ सा अल्पमति शास्त्र की रचना करना चाहता है।

तो यह निर्विवाद सत्य है कि आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने युग में वह काम कर दिखाया था कि जिसके कारण वे आने वाले समय में महान् आचार्यों के प्रेरणास्रोत रहे। उनके उपलब्ध साहित्य से ही हमें उनकी बहुश्रुतता एवं कारयित्री प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय तत्कालीन दार्शनिक ग्रन्थों में मिलता है। जैन न्याय, योग शास्त्र और जैन कथा साहित्य में उन्होंने युगान्तर उपस्थित किया। श्री हरिभद्रसूरि जैन योग साहित्य में नये युग के प्रतिष्ठादायक माने जाते हैं। जैन धर्म मूलत: निवृत्ति प्रधान है एवं निवृत्ति में योग का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यधिक महत्त्व है। जैनागमों में योग शब्द का प्रयोग ध्यान के अर्थ में किया गया है एवं ध्यान के लक्षण और प्रभेद आलम्बन आदि का पूर्ण विवरण आगमों में है। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार आचार्य हरिभद्रसूरि ने योग विषयक अनेक ग्रंथ लिखे एवं एक नयी शैली में योग का निरूपण किया जो अनूठा था। उनके द्वारा रचित योग बिन्दु, योग दृष्टि समुच्चय, योग विंशिका, योग शतक एवं योग षोडषक ग्रन्थों में जैन मार्गानुसार योग का वर्णन किया गया है। जैन शास्त्र में आध्यात्मिक विकास क्रम के प्राचीन वर्णन में चौदह गुणस्थानक पदस्थ, रूपस्थ आदि चार ध्यान रूप बहिरात्म आदि तीन ध्यानावस्थाओं का वर्णन मिलता है, पर आचार्य हरिभद्रसूरि ने जैनों के इस आध्यात्मिक विकास क्रम का योग मार्गानुसार वर्णन किया। इस वर्णन में उन्होंने जिस शैली का अनुसरण किया, उसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते।

उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक जैन जैनेत्तर योगियों का नामोल्लेख किया है जैसे गोपेन्द्र कालातीत, पतंजलि, भदन्त, भास्कर, बन्धु, भगवदत्त आदि। पंडित सुखलाल जी ने अपने योगदर्शन निबन्ध में वह स्वीकार किया है कि आचार्य हरिभद्रसूरि वर्णित योग वर्णन योग साहित्य में एक नवीन दिशा है।

समराइच्चकहा महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित है एवं कथा साहित्य में युगान्तरकारी है। उसमें वर्णित कथा गंगा के शान्त प्रवाह की भांति स्थिर तथा सौम्य रूप से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। पुरातत्त्ववेत्ता पद्मश्री जिन विजयजी के अनुसार साधारण प्राकृत समझने वाले व्यक्ति भी उसे आसानी से समझ सकते हैं।

एक जन श्रुति के अनुसार उन्होंने १४४४ प्रकरण ग्रन्थों का प्रणयन किया था, पर, मेरी मान्यता के अनुसार ये सब विषय होंगे जिन पर उनकी समर्थ लेखनी चली होगी। वास्तव में अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण ये जैन धर्म के पूर्वकालीन तथा उत्तरकालीन इतिहास के मध्यवर्ती समा स्तम्भ रहे हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं पर उनका समान अधिकार रहा है। जैन ग्रन्थों तथा उनके स्वयं के सन्दर्भों से उनके विषय में यह जानकारी मिलती है कि विद्वत्ता के अभिमान में उन्होंने एक बार प्रतिज्ञा की कि जिसका कहा उनकी समझ में नहीं आयेगा वे उसी के शिष्य बन जायेंगे। एक दिन वे जैन उपाश्रय के पास से निकल रहे थे, उस समय साध्वी याकिनी महत्तरा के मुख से निकली प्राकृत गाथा उनकी समझ में नहीं आई एवं वे तुरन्त अपनी प्रतिज्ञानुसार उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये। साध्वी याकिनी महत्तराजी ने उन्हें अपने गुरु आचार्य जिनभद्र से दीक्षा दिला दी पर, हरिभद्रसूरि ने याकिनी महत्तरा को सदैव अपनी धर्म जननी माना एवं अपने प्रत्येक ग्रन्थ की समाप्ति पर "याकिनी महत्तरा धर्म सूनु" विशेषण का प्रयोग किया है। इनका गच्छ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का विद्याधर गच्छ था।

आचार्य हरिभद्रसूरि की विविधोन्मुखी रचना शक्ति इससे प्रकट होती है कि उन्होंने सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, अद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि सभी मतों की आलोचना प्रत्यालोचना की है। इस आलोचना प्रत्यालोचना की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने विरोधी मत वाले विचारकों का भी नामोल्लेख बहुत आदर के साथ किया है। उनके प्रमुख ग्रन्थ निम्न हैं—

१. अनेकान्त वाद प्रवेश
२. अनेकान्त जय पताका—स्वोपज्ञ वृत्ति सहित
३. अनुयोगद्वार सूत्र वृत्ति
४. अष्टक प्रकरण
५. आवश्यक सूत्र—वृहद् वृत्ति
६. उपदेशपद प्रकरण
७. दशवैकालिक सूत्र वृत्ति
८. दिङ्नाग कृत न्याय प्रवेश सूत्र वृत्ति
९. धर्म-बिन्दु प्रकरण
१०. धर्म-संग्रहणी प्रकरण
११. नन्दी सूत्र लघु वृत्ति

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

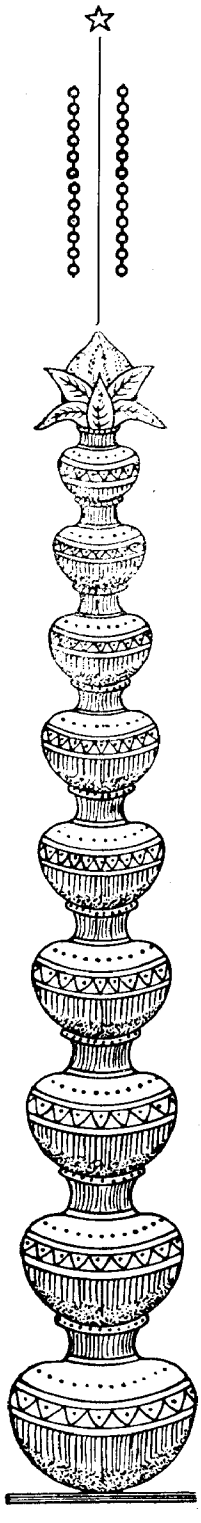

१२. पंचाशक प्रकरण
१३. पंचवस्तु प्रकरण टीका
१४. प्रज्ञापना सूत्र प्रदेश व्याख्या
१५. योग दृष्टि समुच्चय
१६. योग बिन्दु
१७. ललित विस्तरा चैत्य वन्दन सूत्र वृत्ति
१८. लोक तत्त्व निर्णय
१९. विंशति विंशतिका प्रकरण
२०. षड्दर्शन समुच्चय
२१. श्रावक प्रज्ञप्ति
२२. समराइच्च कहा (समरादित्य कथा)
२३. सम्बोध प्रकरण
२४. सम्बोध सप्ततिका प्रकरण
२५. आवश्यक सूत्र टीका

डा० हर्मन याकोबी ने लिखा है कि इन्होंने प्राकृत भाषा में लिखित जैनागमों की संस्कृत टीकायें निर्युक्तियाँ एवं चूर्णियाँ लिखकर जैन एवं जैनेतर जगत का बहुत उपकार किया। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी उनके ८२ ग्रंथ और हैं जिनमें उनकी बहुमुखी रचना शक्ति के दर्शन होते हैं। इन ८२ ग्रंथों का उल्लेख पं० हरगोविन्ददास कृत 'हरिभद्र चरित्रम्'', स्व मनसुखलाल किरनचन्द मेहता, पं० बेचरदासजी कृत 'जैन-दर्शन' आदि के आधार पर हुआ है। उनके द्वारा रचित आध्यात्मिक तथा तात्विक ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि वे प्रकृति से अति सरल एवं सौम्य थे। गुणानुरागी तथा जैन धर्म के अनन्य समर्थक होते हुए भी वे सदैव सत्यान्वेषी थे। तत्त्व की विचारणा करते समय वे सदा माध्यस्थ्य भाव रखते थे।

उनका समय वि० सं० ७५७ से ८२७ के बीच में माना जाता है। कुमारिल भट्ट वि० सं० ७५० के आस-पास हुए हैं एवं धर्मपाल के शिष्य धर्मकीर्त्ति ६९१ वि० सं० ७०६ वि० तक विद्यमान रहे हैं। हरिभद्रसूरि ने इन सबका उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। संवत् ८३४-३५ में रचित कुवलय माला प्राकृत कथा के रचनाकार उद्योतन सूरि हरिभद्र सूरि के शिष्य थे।

आचार्य श्री ने अष्टक, षोडषक एवं पंचाशक आदि प्रकरण लिखकर तत्कालीन असाधु आचार को मार्ग निर्देश दिया। चैत्यवासियों को उन्होंने ललकारा कि वे धर्म के पथ से च्युत हो रहे हैं। उनके द्वारा देव द्रव्य का भक्षण रोकने के लिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि देव द्रव्य का भक्षण करने वाला नरकगामी होता है। वे निश्चय ही युग द्रष्टा, सृष्टा एवं क्रान्तिकारी थे। आज उनके साहित्य के पठन पाठन की आवश्यकता है जिससे हम चतुर्विध संघ को पतन के रास्ते से हटाकर वीर प्रदर्शित मार्ग पर आरूढ़ कर सकते हैं।

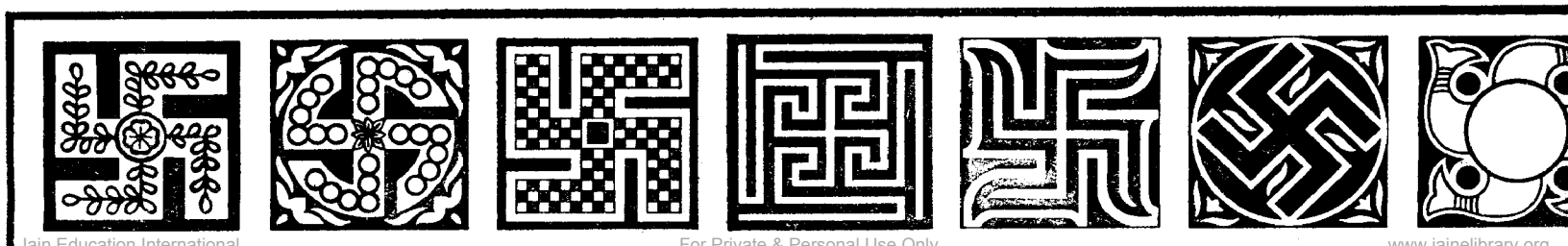

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org